अंक 264 वर्ष 55

भाषा

जनवरी–फरवरी 2016

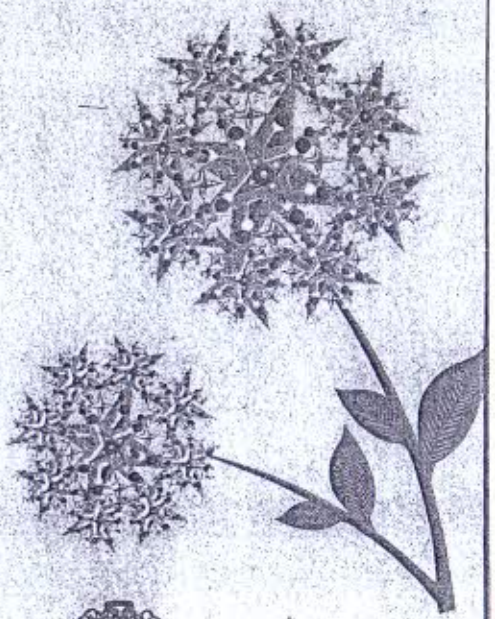

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : 55 □ अंक : 3 (264)
जनवरी–फरवरी, 2016

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :			
स्वदेश में : एक प्रति	:	₹ 25/–	(डाकखर्च अतिरिक्त : ₹ 11/–)
वार्षिक	:	₹ 125/–	(डाकखर्च अतिरिक्त : ₹ 66/–)
विदेश में : एक प्रति	:	£ 1 अथवा $ 2	(डाकखर्च सहित)
वार्षिक	:	£ 1 अथवा $ 2	(डाकखर्च सहित)

वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 07
आपने लिखा 08

आलेख

1.	चेतना की सर्व–व्यापकता और संत–संस्कृति	डॉ. बलदेव वंशी	11
2.	संत रविदास की बानियों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. विनीता कुमारी	22
3.	निराला–काव्य और कवि की 'शक्ति–साधना'	डॉ. केशरी लाल वर्मा डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति	33
4.	भोजपुरी के भारतेंदु भिखारी ठाकुर की लोकनाट्य–भाषा	डॉ. धनंजय सिंह	49
5.	गाथा सप्तशती की मूलभूत काव्य–तकनीक और उसका द्रविड़ स्रोत	डॉ. एम. शेषन	58
6.	हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी शिक्षण की रणनीति (असम के विशेष संदर्भ में)	डॉ. अनुशब्द	68
7.	हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन.... ग़ालिब	ब्रजकिशोर झा	75
8.	गाँधीजी का प्रभाव मलयालम साहित्य पर	डॉ. प्रमोद कोवप्रत	82
9.	बेल से बेल–फेस तक की यात्रा	डॉ. एम. आंजनेयुलु	92
10.	संस्कृत और रूसी की शब्दावली	हेमचंद्र पांडे	98

हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी शिक्षण की रणनीति

(असम के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अनुशब्द

भाषा जातीय और मनोवैज्ञानिक अस्मिता है। यह व्यक्ति, समाज और संस्कृति का रसायन है। भाषा और समाज की संरचनात्मक समानांतरता का उल्लेख करते हुए अजय तिवारी ने लिखा है कि 'व्यक्ति और समाज दोनों से ही मनुष्यता बनती है। जैसे शब्द अकेला कभी भी अर्थवान नहीं होता, व्यक्ति अकेला कभी भी मनुष्य नहीं होता। समाज मनुष्य की व्यवस्था है, वाक्य भाषा की व्यवस्था है। व्यक्ति समाज की इकाई है, शब्द भाषा की इकाई है। व्याकरण व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का प्रतिफलक है। यह आंतरिक प्रतिबिंब नहीं, प्रतिफलक है।'[1] गरज कि भाषा, समाज और संस्कृति एक दूसरे से इस कदर अनुस्यूत हैं कि इनमें से किसी एक में परिवर्तन होता है तो अन्य अप्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इनमें से कोई भी घटक जड़ता का शिकार होता है तो उनका आपसी समीकरण नकारात्मक हो जाता है। कारण कि भाषा का संबंध–सरोकार हमारी अधिरचना से तो है ही, उसकी गहरी आसक्ति हमारी मनोरचना से भी है। वह मात्र वस्तु नहीं है, वह हमारी चेतना की अंतर्वस्तु भी है। इसलिए भाषा–शिक्षण एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्रवाई भी है और सार्थक हस्तक्षेप भी।

भाषा–शिक्षण मूलतः संवाद है। रंगमंचीय संवाद। जो जाग्रत और जीवंत रिश्ता रंगशाला में अभिनेता और प्रेक्षक के बीच होता है वही जीवंतता पाठशाला में शिक्षक और छात्र के बीच भी होती है। जैसे प्रेक्षक भी अभिनेता होता है, वैसे ही कभी–कभी छात्र भी शिक्षक हो जाते हैं क्योंकि एक दूसरे

से सीखने की प्रक्रिया बराबर जारी रहती है। शिक्षार्थी के सात्विक भावों से शिक्षक प्रभावित होते हैं और शिक्षक की वाचिक एवं आंगिक अभिव्यक्तियों से शिक्षार्थी कृतार्थ होते हैं। इस प्रकार्य में प्रेष्य की ही भूमिका निर्णायक होती है। वही शिक्षक की सफलता और विफलता का मानक होता है। इस प्रकार शिक्षण भाषिक परिचर्या नहीं है, वह मानसिक कार्यव्यापार है, अकादमिक अनुशासन भी है। इसीलिए वेदों में प्रतीकात्मक तरीके से कहा गया है कि 'शिक्षक उपनयन–संस्कार करके शिष्य को गर्भ में धारण करता है और तीन रात्रि तक उदर में रखता है, तब शिष्य का पुनर्जन्म होता है'।[2] आधुनिक संदर्भ में यहाँ तीन रातों को प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षण का ज्ञापक माना जा सकता है एवं छात्र और शिक्षक के आत्मीय रिश्ते को वात्सल्य के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। पहले की तरह अध्यापन अब व्यसन (पैशन) नहीं है। अब वह अकादमिक व्यापार हो गया है। इसलिए अब गुरु–शिष्य परंपरा मृतप्राय हो गई है और विद्यार्थी एवं शिक्षक का संबंध भी व्यक्तिगत लाभ–हानि के पलड़े पर तुलता रहता है। नतीजतन, यह निरंतर दुर्बल होता जा रहा है। यह आधुनिक शिक्षण का ऋणात्मक पक्ष है जिसके लिए न तो छात्र जिम्मेदार हैं और न ही शिक्षक, बल्कि आज का पूंजीवादी परिवेश सर्वाधिक उत्तरदायी है। जहाँ हर चीज बिकाऊ हो और बाजारू हो, वहाँ अक्ल और ईमान की बात करना बेमानी है। इसीलिए गालिब ने कभी कहा था:

'वफादारी, बशर्त–ए–उस्तुवारी अस्ल–ए–इमां है
मरेबुतखाने में तो काबे में गाड़ो ब्रह्मन को।'

असल बात तो ईमान की है उसी से हमारी वफादारी तय होती है और पद–प्रतिष्ठा भी। अगर मूर्तिपूजक ब्राह्मण भी अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति वाकई ईमानदार है तो उसे भी काबे में जगह दी जानी चाहिए। 'अस्ले –ईमान' की नजर से हम अपना मूल्यांकन करें तो हमें अपनी औकात का पता चल जाएगा और आज के शिक्षण की बदहाली का सबब भी। कोई भी राष्ट्र अपनी जड़ों से कट जाता है और आयातित मूल्यों को अपना आसन–डासन बना लेता है तो उसकी जातीय अस्मिता खतरे में पड़ जाती है। हमारा शिक्षण–संस्कार भी बाजारवादी वायरसों की खुराक बन गया है। मगर उसके